संस्कृत-जैन-व्याकरण-परम्परा

□ डॉ० गेहरीलाल शर्मा

[प्रवक्ता-संस्कृत, राजकीय उ० मा० विद्यालय, लोहारिया, जिला—बांसवाड़ा (राजस्थान)]

भारत में व्याकरण शास्त्र के अध्ययन और अध्यापन की जड़ें बहुत गहरी हैं। यहाँ पर व्याकरण की शिक्षा को सदैव ही प्रमुख स्थान मिलता रहा है। शास्त्र की अनेक शाखाओं में व्याकरण को प्रधान माना गया है—'प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्।' व्याकरण शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उसकी यह परिभाषा प्रसिद्ध है—'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम्।' अर्थात् जिसके द्वारा प्रकृति और प्रत्यय को अलग-अलग करके शब्द की व्युत्पत्ति का ज्ञान किया जाय, वह व्याकरण है।

जब से भाषा का प्रारम्भ हुआ, तब से उसके नियमों व उपनियमों के ज्ञाता विद्वान् भी रहे हैं। जिस प्रकार पाणिनि संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के जनक माने जाते हैं, उसी तरह जैनाचार्यों ने भी व्याकरण शास्त्र के क्षेत्र में अनेक नई उद्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं।

प्राकृत में लिखे गये आगम ग्रन्थों में यत्र-तत्र प्राकृत व्याकरण के नियमों का उल्लेख मिलता है। आचारांग-सूत्र में एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग एवं नपुंसकलिंग तथा वर्तमान, भूत एवं भविष्यत् काल के वचनों का उल्लेख है। यथा—

समियाए, संजए, भासं, भासेज्जा, तं जहा—एगवयणं, बहुवयणं, इत्थीवयणं, णपुंसगवयणं, पच्चक्खवयणं, परोक्खवयणं॥

—आयार चूला, ४.१, सूत्र ३.

स्थानांगसूत्र में आठ कारकों का सोदाहरण निरूपण है। यथा—

अट्ठविहा वयणविभत्ती पण्णत्ता, तं जहा—
णिद्देसे पढमा होई, बितिया उवएसणे।
तइया करणम्मि कया, चउत्थी संपदावणे॥१॥

....

हवइ पुण सत्तमी तंमि, मम्मि आहारकालभावे य।
आमंतणी भवे अट्ठमी, उ जह हे जुवाणत्ती॥६॥

—स्थानांगसूत्र, अष्टमस्थान, सूत्र ४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त अनुयोगद्वारसूत्र में शब्दानुशासन सम्बन्धी पर्याप्त विवेचन हुआ है। इसमें नाम शब्द, समास, आख्यात शब्द आठों विभक्तियों आदि का विस्तृत विवरण विद्यमान है।

इस प्रकार प्रकृत ग्रन्थों में प्राकृत-व्याकरण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख मिलता है, पर प्राकृत भाषा में ही लिखा गया कोई स्वतन्त्र व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है। प्राकृत भाषा के जितने भी व्याकरण लिखे गये वे सभी संस्कृत भाषा में ही लिखे गए। उन ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थों का केवल उल्लेख ही मिलता है। कुछ उपलब्ध हैं, कुछ अनुपलब्ध हैं। ऐसे ग्रन्थों में चण्डकृत प्राकृत लक्षण, त्रिविक्रमकृत प्राकृत शब्दानुशासन आदि प्रमुख हैं।

जैन परम्परा में संस्कृत व्याकरण ग्रन्थों की रचना कब से हुई, यह कहना कठिन है। इस परम्परा में सबसे प्राचीन उपलब्ध व्याकरणशास्त्र आचार्य देवनन्दी की कृति जैनेन्द्र व्याकरण है। पर प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह मानना उचित है कि आचार्य देवनन्दी के पूर्व भी जैन परम्परा से सम्बन्धित व्याकरण की कृतियाँ थीं। जिस प्रकार महर्षि पाणिनि के व्याकरण ग्रन्थ शब्दानुशासन में उनमें पूर्व के वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है, उसी प्रकार जैनेन्द्र व्याकरण से लेकर परवर्ती जैन परम्परा के व्याकरण ग्रन्थों में पूर्वाचार्यों और उनकी कृतियों का उल्लेख है। उनमें से शब्दप्रभृत, ऐन्द्र व्याकरण और क्षपणक व्याकरण प्रसिद्ध हैं।

शब्दप्राभृत (सद्दपाहुड)

परम्परा के अनुसार शब्दप्राभृत या सद्दपाहुड की रचना संस्कृत में की गई थी। यह पूर्वग्रन्थों का अंग है। जैन आगमों के दृष्टिवाद में चौदह पूर्व शामिल थे। ये पूर्व ग्रन्थ भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के माने जाते हैं। पार्श्वनाथ का समय भगवान् महावीर से दो सौ पचास वर्ष पूर्व का माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि पूर्वों की रचना ईसा पूर्व आठवीं शती में हुई होगी।[1] अतः शब्द प्राभृत का समय भी आठवीं शती माना जा सकता है। सिद्धसेनगणि ने कहा है कि पूर्व ग्रन्थों में जो शब्द प्राभृत है, उसी में से व्याकरणशास्त्र का उद्भव हुआ है। चौदह पूर्व संस्कृत भाषा में थे अतः इसकी भाषा भी संस्कृत हो रही होगी।[2]

डॉ० नेमिचन्द शास्त्री के अनुसार[3] सत्यप्रवाद पूर्व में व्याकरणशास्त्र के नियमों का उल्लेख मिलता है। इसमें वचन संस्कार के कारण, शब्दोच्चारण के स्थान, प्रयत्न, वचन भेद आदि का विवेचन किया गया है। इस प्रकार सत्यप्रवाद पूर्व में व्याकरणशास्त्र का प्रारम्भिक स्वरूप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

ऐन्द्र व्याकरण

अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि जैन परम्परा में ऐन्द्र व्याकरण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस व्याकरण के कर्ता भगवान् महावीर को माना जाता है। परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर ने इन्द्र के लिए एक शब्दानुशासन कहा। उसे उपाध्याय लेखाचार्य ने सुनकर ऐन्द्र नाम से लोक में प्रकट किया। इस सम्बन्ध में आवश्यक निर्युक्ति तथा हारिभद्रीय आवश्यकवृत्ति में कहा है—

सक्को आ तत्समक्खं, भगवंतं आसणे निवेसिता।
सदस्स लक्खणं पुच्छे, वागरणं अवयवा इदं॥

बहुत समय तक आचार्य देवनन्दी के जैनेन्द्र व्याकरण को ही ऐन्द्र व्याकरण मानने का भ्रम चलता रहा।

---

१. संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा, पृ० ३९. (गोकुलचन्द का लेख)
२. पं० अम्बालाल प्रे०शाह—जैन साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ५, पृ० ६.
३. डॉ० नेमिचन्द शास्त्री—जैन विद्या का सांस्कृतिक अवदान, पृ०४२-४३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर वस्तुतः ये दोनों व्याकरण भिन्न हैं। जैनेन्द्र व्याकरण के पहले ही ऐन्द्र व्याकरण के उल्लेख मिलते हैं। इस भ्रम को फैलाने का जिम्मेदार रत्नर्षि के "भगवद्वाग्वादिनी" नामक ग्रन्थ को मानते हुए डॉ० गोकुलचन्द जैन ने इस भ्रम के निवारण का प्रयास किया है।[1] इस ऐन्द्र व्याकरण की रचना ईसापूर्व ५९० में हुई होगी, ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं। पर यह व्याकरण अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ है।

क्षपणक व्याकरण

अनेकानेक ग्रन्थों में आये हुए प्रमाणों से ज्ञात होता है कि किसी क्षपणक नामक वैयाकरण ने भी शब्दानुशासन की रचना की थी। तन्त्रप्रदीप में क्षपणक के व्याकरण का अनेक बार उल्लेख हुआ है। एक स्थान पर आया है 'अत एव नावमात्मानं मन्यते इति विग्रहपरत्वादनेन ह्रस्वत्वं बाधित्वा अमागमे सति "नावं मन्ये" इति क्षपणक व्याकरणे दर्शितम्।'[2] कवि कालिदास रचित "ज्योतिर्विदाभरण" नामक ग्रन्थ में विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में क्षपणक का भी उल्लेख हुआ है। यथा—

धन्वन्तरि क्षपणकोऽमरसिंह शंकु—
वेतालभट्ट घटकर्पर-कालिदासाः
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ॥

तन्त्रप्रदीप सूत्र ४. १. १५५ में "क्षपणक महान्यास" का उल्लेख है। उज्ज्वलदत्त विरचित "उणादिवृत्ति" में "क्षपणक वृत्तौ अत्र इति शब्द आद्यर्थे व्याख्यातः" इस प्रकार उल्लेख किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि शब्दानुशासन के अतिरिक्त न्याय और वृत्ति ग्रन्थ भी क्षपणक विरचित रहे होंगे। पर आज तक क्षपणक के अन्य शास्त्रों में उल्लेख के अतिरिक्त उनकी किसी भी प्रकार की रचना प्राप्त नहीं हुई है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि व्याकरण की परम्परा में यह जैन व्याकरणत्रयी बहुत महत्त्वपूर्ण है। परवर्ती व्याकरणशास्त्रकारों ने इस त्रयी को अत्यन्त आदर के साथ स्मरण किया है।

इनके अतिरिक्त देवनन्दी ने अपने जैनेन्द्र व्याकरण में श्रीदत्त, यशोभद्र, भूतबलि, प्रभाचन्द्र, सिद्धसेन और समन्तभद्र इन प्राचीन जैनाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है।[3] परन्तु इन आचार्यों का कोई भी ग्रन्थ अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ है और न कहीं अन्यत्र इनके वैयाकरण होने का उल्लेख मिलता है।

इन पूर्वाचार्यों के पश्चात् जैन व्याकरण परम्परा के व्याकरणशास्त्र उपलब्ध होने लगते हैं। उपलब्ध व्याकरणशास्त्रों की भी एक दीर्घ-परम्परा विद्यमान है। इस परम्परा के अन्तर्गत अनेक आचार्यों ने महत्त्वपूर्ण व्याकरणशास्त्रों की रचनाएँ थीं। इन स्वयं ने तथा अन्यान्य आचार्यों ने इनके व्याकरण पर परप्रक्रिया ग्रन्थ, वृत्तियाँ, न्यासग्रन्थ आदि ग्रन्थों की रचनाएँ कीं। इन पर विस्तार से प्रकाश डालने पर इनका महत्त्व स्वतः प्रकट हो जायगा।

जैनेन्द्र व्याकरण

उपलब्ध जैन व्याकरण के ग्रन्थों में जैनेन्द्र व्याकरण प्रथम कृति मानी जाती है। इसकी रचना पूज्यपाद आचार्य देवनन्दी ने की। देवनन्दी दिगम्बर परम्परा के विश्रुत जैनाचार्य थे। उनके पूज्यपाद तथा जैनेन्द्रबुद्धी नाम भी प्रचलित थे। नन्दीसंघ की पट्टावली में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

---

१. संस्कृत प्राकृत जैन व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० ४०.
२. भरत कौमुदी, भाग २, पृ० ८९३ की टिप्पणी.
३. (i) गुणे श्रीदत्तस्यास्त्रियाम् ॥१. ४. ३४॥
(ii) कृवृषिमृजां यशोभद्रस्य ॥२. १.९९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशः कीर्तियशोनन्दि देवनन्दी महामतिः ।
श्री पूज्यपादापराख्यो, गुणनन्दी गुणाकरः ।।

श्रवणबेलगोल के ४० वें शिलालेख में देवनन्दी का जिनेन्द्रबुद्धी नाम बताया गया है । यथा—

यो देवनन्दि प्रथमाभिधानो, बुद्ध्या महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः ।
श्री पूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं मदीयम् ।।

जिनका प्रथम नाम देवनन्दी था, एवं बुद्धि की महत्ता के कारण जिनेन्द्रबुद्धि नाम हुआ, देवताओं द्वारा जिनके चरणों की पूजा की गई, अतः पूज्यपाद देवनन्दी उत्पन्न हुए। बौद्ध साधु जिनेन्द्रबुद्धि से पूज्यपाद देवनन्दी भिन्न रहे हैं ।[1] इनका समय चौथी से छठी शताब्दी के बीच में माना जाता है। मुग्धबोध के कर्त्ता वोपदेव ने अपने एक पद्य में आठ वैयाकरणों के नामों का उल्लेख किया है—

इन्द्रश्चन्द्रकाशकृत्स्नापिशली शाकटायना ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ।।

इस पद्य में जैनेन्द्र का नाम भी आया है । यदि यह नाम जैनेन्द्र-व्याकरण के कर्त्ता जैनेन्द्रबुद्धि का ही हो तो इनका समय पाणिनि पूर्व का माना जा सकता है ।[2] पर युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार पूज्यपाद के 'अरुणन्महेन्द्रो मथुराम्' उदाहरण में गुप्तवंशीय कुमारगुप्त की मथुराविजय की ऐतिहासिक घटना सुरक्षित है ।[3] इससे प्रकट होता है कि पूज्यपाद कुमारगुप्त के समकालिक होने से ५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए होंगे ।

अद्यावधि प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यही ज्ञात होता है कि जैनाचार्य द्वारा रचित मौलिक व्याकरणों में जैनेन्द्र व्याकरण सर्वप्रथम रचना हैं । इसमें पाँच अध्याय है । इसी कारण इसका नाम पंचाध्यायी भी है । पाणिनि की तरह ही विधानक्रम को दृष्टिगत रखते हुए सूत्रों की रचना की गई है । एकशेष प्रकरण रहित याने अनेकशेष रचना इस व्याकरण की अपनी विशेषता है । इसमें संज्ञाएँ अल्पाक्षरी हैं । इस ग्रन्थ की रचना करते समय पाणिनीय अष्टाध्यायी को आधार माना गया है । संज्ञाओं के अल्पाक्षरी होना, वैदिक प्रयोगों को भी लौकिक मान कर सिद्ध करना आदि कुछ ऐसे कारण हैं, जिनसे यह व्याकरण कुछ क्लिष्ट हो गई है । डॉ० गोकुलचन्द जैन लिखते हैं कि आचार्य देवनन्दी ने पाणिनीय अष्टाध्यायी को आधार मानकर उसे पंचाध्यायी में परिवर्तित करते समय दो वातों की ओर विशेष ध्यान रखा था । एक तो धातु, प्रत्यय, प्रातिपदिक, विभक्ति, समास आदि अन्वर्थ महासंज्ञाओं को बीजगणित की तरह अतिसंक्षिप्त संकेतों में बदल दिया हैं । दूसरे जितने स्वर सम्बन्धी तथा वैदिक प्रयोग सम्बन्धी सूत्र थे उनको छोड़ दिया है ।[4]

इस रचना के दो पाठ प्राप्त होते हैं । इसके प्राचीन पाठ में ३००० हजार सूत्र तथा अर्वाचीन संशोधित पाठ में ३६०० सूत्र हैं । अनेक सूत्रों और संज्ञाओं में भी भिन्नता है। दोनों पाठों पर अलग-अलग टीका ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं । इतना भेद होते हुए भी इनमें पर्याप्त मात्रा में समानता विद्यमान है ।

शाकटायन व्याकरण

महर्षि पणिनि के शब्दानुशासन में अनेक स्थानों पर शाकटायन का उल्लेख है, पर इनके किसी व्याकरण के होने के प्रमाण नहीं मिलते हैं । जब १८६४ में बुहलर को शाकटायन शब्दानुशासन की पाण्डुलिपि का कुछ अंश

---

१. पं० अम्बालाल प्रे० शाह—जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ५, पृ० ८.
२. पं० अम्बालाल प्रे० शाह—जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ५, पृ० ८.
३. युधिष्ठिर मीमांसक—जैनेन्द्रशब्दानुशासन तथा उसके भिन्न पाठ, जैनेन्द्र-महावृत्ति, ४३-४४.
४. संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० ४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिला तो उन्होंने संस्कृत जगत् को अवगत कराया कि पाणिनि द्वारा उल्लिखित शाकटायन वैयाकरण का ग्रन्थ उपलब्ध हो गया है। पर वास्तव में यह भ्रम था, जिसका आगे चलकर निवारण हो गया। वास्तव में यह पाण्डुलिपि यापनीय संघ के अग्रणी आचार्य पाल्यकीर्ति द्वारा रचित 'शब्दानुशासन' की थी। ये पाल्यकीर्ति ही जैन-व्याकरण परम्परा में 'शाकटायन' नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। उनके इस नाम का कारण व्याकरण के क्षेत्र में प्रसिद्ध आचार्य होने के कारण, पाणिनि से पूर्व के आचार्य शाकटायन की उपाधि रहा होगा। उनके इस नाम के आधार पर ही उनका ग्रन्थ 'शाकटायन व्याकरण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आचार्य पाल्यकीर्ति राजा अमोघवर्ष के राज्यकाल में हुए थे। वह वि० सं० ८७१ में राजगद्दी पर बठा। अतः पाल्यकीर्ति ने अपनी कृति की रचना ९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की होगी।

इस व्याकरण में भी प्रकरण विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधान-क्रम का अनुसरण करके सूत्र रचना की गई है। प्रक्रिया क्रम की रचना करने का भी प्रयत्न किया है पर ऐसा करने से कुछ क्लिष्टता तथा विप्रकीर्णता आ गई है। यद्यपि इसकी रचना करते समय पाणिनि के शब्दानुशासन को दृष्टिगत रखा है, फिर भी अनेक क्षेत्रों में इसमें भिन्नताएँ हैं। अध्यायों का विभाजन, विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण, स्वरनियमों का अभाव, प्रत्याहार सूत्रों में परिवर्तन आदि अनेक तत्त्व हैं जो इस व्याकरण को पूर्वाचार्यों की व्याकरण से भिन्न करते हैं। डॉ० गोकुलचन्द जैन ने १६ ऐसी विशेषताएँ बताई हैं जो इस व्याकरण की अन्य पूर्वाचार्यों के व्याकरण से भिन्नता प्रकट करती हैं।[1] यक्षवर्मा ने इस ग्रन्थ की चिन्तामणि टीका में इसकी विशेषता बताते हुए लिखा है—

इष्टिर्नेष्टा न वक्तव्यं वक्तव्यं सूत्रतः पृथक्।
संख्यानं नोपसख्यानं यस्य शब्दानुशासने।।

इन्द्रचन्द्रादिभिः शब्दैर्यदुक्तं शब्दलक्षणम्।
तदिहास्ति समस्तं च यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

अर्थात् शाकटायन व्याकरण में इष्टियाँ[2] पढ़ने की आवश्यकता नहीं। सूत्रों से पृथक् कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। उपसंख्यान करने की भी आवश्यकता नहीं है। इन्द्र, चन्द्र आदि वैयाकरणों ने जो कुछ शब्दलक्षण कहा है, वह सब कुछ इसमें विद्यमान है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं पर भी नहीं है।

पंचग्रन्थी व्याकरण

इस व्याकरण का अपरनाम 'बुद्धिसागर व्याकरण' और 'शब्दलक्ष्म' भी है। इस ग्रन्थ की रचना श्वेताम्ब-आचार्य बुद्धिसागर सूरि ने वि० सं० १०८० में की थी।[3] श्वेताम्बराचार्यों के उपलब्ध व्याकरण ग्रन्थों में सर्वप्रथम इन्हीं की रचना आती हैं। ये आचार्य वर्धमानसूरि के शिष्य थे। ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य बताते हुए स्वयं आचार्य ने कहा है कि जैन परम्परा में शब्दलक्ष्म और प्रमालक्ष्म का अभाव है। इस क्षेत्र में ये पर-ग्रन्थोपजीवी हैं। दुर्जनों के इस आक्षेप के निवारण के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गई है।[4]

---

१. संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० ६१-६४.

२. सूत्र और वार्त्तिक से सिद्ध न होने पर भाष्यकार के प्रयोगों से जो सिद्ध हो उसको इष्टि कहते हैं।

३. श्री विक्रमादित्य नरेन्द्रकालात् साशीतिकं याति समासहस्रे स श्रीकजावालिपुरे तदाद्यं दृब्धं मया सप्तसहस्रकल्पम्।।
—व्याकरणप्रान्त प्रशस्ति.

४. तैरवधीरिते यत्तु प्रवृत्तिरावयोरिह।
तत्र दुर्जनवाक्यानि प्रवृत्तेः सन्निबन्धनम्।। ४०३।।

शब्दलक्ष्मप्रमालक्ष्म यदेतेष्णां न विद्यते।
नादिमन्तस्ततो ह्येते परलक्ष्मोपजीविनः।। ४०४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ग्रन्थ ७००० श्लोक प्रमाण गद्य-पद्यमय रचना है। इसकी रचना अनेक व्याकरण ग्रन्थों के आधार पर की गई है। धातु सूत्र, गण पाठ, उणादिसूत्र वृतबन्ध में हैं। इस व्याकरण की हस्तलिखित प्रति जैसलमेर भण्डार में है। प्रति अत्यन्त अशुद्ध है।

सिद्धहेमचन्द्राशब्दानुशासन

श्वेताम्बराचार्यों में हेमचन्द्रसूरि का नाम बहुत प्रसिद्ध आचार्यों की श्रेणी में आता है। इन्होंने गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह की प्रार्थना पर एक शब्दानुशासन की रचना की। इन्होंने इस ग्रन्थ का नाम सिद्धराज और अपना नाम साथ में जोड़कर सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन रखा। इसका रचनाकाल वि० सं० ११४५ के आस-पास है। यह ग्रन्थ बहुत ही लोकप्रिय हुआ। इसी कारण इस पर ६२-६३ टीकाएँ हैं। इस ग्रन्थ की परिपूर्णता की दृष्टि से वृत्तियों, उणादिपाठ, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिंगानुशासन भी उन्होंने स्वयं ही लिखे हैं।

आचार्य का उद्देश्य पूर्वाचार्यों के व्याकरणों में विद्यमान कमियों को दूर करते हुए एक सरल व्याकरण की रचना करना रहा है। इस शब्दानुशासन में कुल आठ अध्याय हैं, जिनमें से प्रथम सात संस्कृत भाषा के लिये हैं तथा अन्तिम एक प्राकृत भाषा के लिए हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद है। कुल मिलाकर ४६८५ सूत्र हैं। इस व्याकरण को विशृंखलता, क्लिष्टता, विस्तार और दूरान्वय जैसे दोषों से बचाया गया है। इसकी सूत्र संकलना दूसरे व्याकरणों की अपेक्षा सरल और विशिष्ट प्रकार की है। संज्ञाएँ सरल हैं। विषयक्रम, संज्ञा, सन्धि, स्यादि, कारक, षत्व, णत्व स्त्रीप्रत्यय, समास, आख्यात, तद्धित और कृदन्त के रूप में रखा गया है। इस व्याकरण की अनेक विशेषताओं पर डॉ० नेमिचन्दशास्त्री ने विस्तारपूर्वक विचार किया है।[1]

हेमचन्द्राचार्य अपने इस शब्दानुशासन की रचना के लिए विशेष रूप से शाकटायन के ऋणी रहे हैं। जहाँ पर शाकटायन के सूत्रों से काम चला वहाँ पर वे ही सूत्र रहने दिये तथा जहाँ पर परिवर्तन की आवश्यकता हुई, उसमें परिवर्तन किया। इनके व्याकरण का इतना प्रभाव फैल गया कि इन्होंने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा कि—"आकुमारं यशः शकटायनस्य"। अर्थात् शाकटायन का यश कुमारपाल तक ही रहा। क्योंकि तब तक "सिद्धहेमचन्द्रानुशासन' न रचा गया था और न प्रचार में आया था।

दीपक व्याकरण

इस व्याकरण की रचना श्वेताम्बराचार्य भद्रेश्वरसूरि ने की। गणरत्न महोदधि में इसका उल्लेख करते हुए वर्धमान सूरि ने लिखा है—'मेधाविनः प्रवरदीपक कर्तृयुक्ता।' उसी की व्याख्या में आगे लिखा है—'दीपककर्त्ता भद्रेश्वरसूरिः। प्रवरश्चासौ दीपककर्त्ता च प्रवरदीपककर्त्ता। प्राधान्यं चास्याधुनिक वैयाकरणपेक्षया।' सायण रचित धातु वृत्ति में श्री भद्र के नाम से व्याकरण विषयक मत के अनेक उल्लेख हैं। संभवतः वे दीपक व्याकरण के होंगे। भद्रेश्वर सूरि ने इस ग्रन्थ के अतिरिक्त लिंगानुशासन और धातुपाठ की भी रचना की होगी क्योंकि सायण और वर्धमान ने इस प्रकार के उल्लेख किये हैं। इनका समय १२वीं या १३वीं वि० शताब्दी माना गया है।[2]

शब्दानुशासन (मुष्टिव्याकरण)

वि० की १३वीं शताब्दी में आचार्य मलयगिरि हुए जो हेमचन्द्रसूरि के सहचर थे। उन्होंने भी शब्दानुशासन की रचना की जिसे मुष्टिव्याकरण भी कहते हैं। इन्होंने अपने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कुमारपाल के राज्यकाल में की है। इस बात के अनुमान का आधार उनके व्याकरण का ख्याते दृश्यते (२२) यह सूत्र है। इसे उदाहरण के रूप उन्होंने "अदहदरातीन् कुमारपालः" ऐसा लिखा है।

---

१. डॉ० नेमिचन्द जैन—जैन विद्या का सांस्कृतिक अवदान, पृ० ५३–६०.

२. पं० अम्बालाल प्रे० शाह—जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, पृ० २३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ग्रन्थ स्वोपज्ञवृत्ति युक्त है। आचार्य क्षेमकीर्तिसूरि ने बृहत्कल्प की टीका की उत्थानिका में "शब्दानुशासन सनादि विश्वविश्वविद्यामय ज्योतिः पुंजपरमाणुघटितमूर्तिभिः" इस प्रकार का उल्लेख मलयगिरि के इस व्याकरण के सम्बन्ध में किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि विद्वानों में इस व्याकरण का उचित आदर था। यह व्याकरण ग्रन्थ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर की ओर से प्राध्यापक पं० बेचरदास दोशी के संपादकत्व में प्रकाशित हो चुका है।

शब्दार्णवव्याकरण

वि० सं० १६८० के आसपास खरतरगच्छीय वाचक रत्नसार के शिष्य सहज-कीर्तिगणि ने शब्दार्णव व्याकरण की रचना की। उन्होंने इस व्याकरण ग्रन्थ की रचना अनेक व्याकरण ग्रन्थों का अवलोकन कर की तथा इसे अधिकारों में वर्गीकृत किया। इन अधिकारों को निम्न पद्यों में प्रकट किया है—

संज्ञाश्लेषः शब्दाः षत्व-णत्वे कारकसंग्रहः।
समासस्त्रीप्रत्ययश्च, तद्धिता कृञ्चधातवः॥

दशाधिकारा एतेऽत्र व्याकरणे यथाक्रमम्।
साङ्गाः सर्वत्र विज्ञेया, यथा शास्त्रं प्रकाशिताः॥

भिक्षुशब्दानुशासन

जैन व्याकरण-परम्परा में अतीव अर्वाचीन एवं सर्वाङ्गपूर्ण संस्कृत-व्याकरण के विषय में यदि जानना चाहें तो इसमें भिक्षुशब्दानुशासन पर दृष्टिपात करना होगा। इस व्याकरण ग्रन्थ की रचना की प्रेरणा के स्रोत तेरापंथ-धर्मसंघ के अष्टम आचार्य कालूगणी रहे हैं। आचार्यजी को संस्कृत विद्या से अगाध प्रेम था। इसी अनुराग ने एक सर्वाङ्गपूर्ण नवीन व्याकरण की सर्जना की भावना को जन्म दिया। उनकी इस भावना को मूर्तरूप विद्वद्वर्य मुनि श्री चौथमलजी ने दिया। उनका अध्ययन आचार्य कालूगणी की देख-रेख में सम्पन्न हुआ था। इनका प्रिय विषय व्याकरण था। इस रुचि के कारण ही उन्होंने पाणिनीय, शाकटायन, सारस्वत, सिद्धान्तचन्द्रिका, मुग्ध-बोध, सारकौमुदी, जैनेन्द्र व्याकरण और सिद्धहेमशब्दानुशासन का गहरा अध्ययन एवं अनुशीलन किया। इस अनुशीलन के कारण उनमें आचार्य कालूगणी की भावना को मूर्त रूप देने की क्षमता आ गई। वर्षों के अध्ययन के बाद सभी शब्दानुशासन के ग्रन्थों से आवश्यक सामग्री को लेकर इन्होंने विशाल शब्दानुशासन की रचना की। इसकी रचना थली प्रदेश में छापर में सम्पन्न हुई। इसका रचनाकाल विक्रम संवत् १९८०-१९८८ है। १९८८ के माघ शुक्ला त्रयोदशी शनिवार को पुष्यनक्षत्र में यह कृति पूरी हुई। विशालशब्दानुशासन के सूत्रों में परिवर्तन एवं परिवर्तन परिवर्धन करके इस ग्रन्थ का निर्माण करने के कारण प्रारम्भ में इसका नाम विशालशब्दानुशासन ही रखा गया। पर बाद में मुनि श्री गणेशमलजी की प्रेरणा से इनका नाम भिक्षुशब्दानुशासन रखने की दृष्टि से आचार्य कालूगणी की स्वीकृति के लिये उनके पास भेजा गया। आचार्यजी ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। उसके पश्चात् विक्रम संवत् १९९१ में इसका नाम भिक्षुशब्दानुशासन रख दिया गया।

इस ग्रन्थ के सूत्रों की रचना मुनि श्री चौथमलजी ने की तथा इसकी वृत्ति की रचना का कार्य पण्डितश्री रघुनन्दन शर्मा ने पूरा किया। पण्डितजी व्याकरण के उच्चकोटि के विद्वान् थे। पाणिनीय व्याकरण उन्हें कण्ठस्थ था। इस प्रकार मुनि श्री चौथमलजी और पण्डित रघुनन्दनजी दोनों के संयुक्त प्रयास से विशालकाय भिक्षुशब्दानुशासन व्याकरण ग्रन्थ पूरा हुआ।

इसमें शब्दों के अनुशासन सूत्रों के साथ-साथ उनकी व्याख्याएँ भी हैं। यह लघु और बृहद् वृत्ति से युक्त है। यह धातुपाठ, गणपाठ, उणादि, लिंगानुशासन, न्यायदर्पण, कारिका संग्रह वृत्ति आदि अवयवों से परिपूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इसके सूत्रों की रचना सरल व स्पष्ट है। जैसे प्रत्याहार सूत्र अ इ उ ऋ लृ, ए ऐ ओ औ, ह् य व र ल, ञ णन-ङम आदि।[1]

ऊपर वर्णित जैन व्याकरण परम्परा में संस्कृत के प्रमुख व्याकरण हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे व्याकरण और उपलब्ध होते हैं जिनका महत्त्व प्रतीत नहीं होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उनका यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर देना ही उचित होगा। अतः अग्रिम पंक्तियों में उन पर एक सूचनात्मक दृष्टिकोण से संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

शब्दार्णव

आचार्य गुणनन्दि ने जैनेन्द्र व्याकरण के सूत्रों से कुछ परिवर्तन और परिवर्धन कर इस व्याकरण की रचना की। इसका रचनाकाल विक्रम सम्बत् १००० के आसपास है।

प्रेमलाभ व्याकरण

इसकी रचना अंचलगच्छीय मुनि प्रेमलाभ ने की है। इसका रचनाकाल वि० सं० १२८३ है। इसका नाम इसके रचयिता के नाम पर ही रख दिया गया है। यह एक स्वतन्त्र व्याकरण रचना है।

विद्यानन्द व्याकरण

तपागच्छीय आचार्य देवेन्द्र सूरि के शिष्य विद्यानन्द सूरि ने अपने ही नाम पर इस ग्रन्थ की रचना की। सका रचनाकाल वि० सं० १३१२ है। यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। गुर्वावली में आचार्य मुनि सुन्दरसूरि ने कहा है कि इस व्याकरण में सूत्र कम हैं, परन्तु अर्थ बहुत है। इसलिए यह व्याकरण सर्वोत्तम जान पड़ता है।[2]

नूतन व्याकरण

कृष्णर्षिगच्छ के महेन्द्र सूरि के शिष्य जयसिंह ने वि० सं० १४४० के आसपास इस नूतन व्याकरण की रचना की। यह व्याकरण स्वतन्त्र है अथवा किसी अन्य बृहद् व्याकरण ग्रन्थ पर आधारित, यह स्पष्टीकरण नहीं हुआ है।

बालबोध व्याकरण

जैनग्रन्थावली के अनुसार इसके रचयिता मेरुतुंगसूरि रहे हैं। इसकी रचना तंत्र का व्याकरण के सूत्रों के आधार पर की गई है। इसका रचनाकाल वि० सं० १४४४ है।

शब्दभूषण व्याकरण

तपागच्छीय आचार्य विजयसूरि के शिष्य दानविजय ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसका रचनाकाल वि० सं० १७७० के आसपास रहा है। यह स्वतन्त्र कृति है या अन्य व्याकरण ग्रन्थ पर आधारित, यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है। यह ग्रन्थ ३०० श्लोक प्रमाण है, इस प्रकार का निर्देश जैन ग्रन्थावली में (पृ० २९८) है।

प्रयोगमुख व्याकरण

इस ग्रन्थ की ३४ पत्रों की प्रति जैसलमेर के भण्डार में विद्यमान है। इसके रचयिता का नाम ज्ञात नहीं हुआ है।

---

१. विस्तृत अध्ययन के द्रष्टव्य—मुनि श्रीचन्द कमल—भिक्षुशब्दानुशासन : एक परिशीलन, संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० १४३.

२. गुर्वावली पद्य १७९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन व्याकरण पर न्यास, टीका आदि ग्रन्थ

जैनेन्द्र व्याकरण पर टीकाएँ

इस व्याकरण पर विचार करते समय स्पष्ट हो चुका है कि जैन परम्परा में यह महत्त्वपूर्ण व्याकरण है। इस पर अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के टीका ग्रन्थों की रचना की। उनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थों पर प्रस्तुत प्रसंग में विचार किया जा रहा है।

स्वोपज्ञ जैनेन्द्रन्यास

पूज्यपाद स्वयं देवनन्दी ने जैनेन्द्र व्याकरण पर स्वोपज्ञ न्यास की रचना की। भिमोगा जिले में प्राप्त एक शिलालेख में इसका उल्लेख मिलता है। वह इस प्रकार है—

न्यासं जैनेन्द्रसंज्ञं सकलबुधनतं पाणिनीयस्य भूयो।
न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा॥

इससे प्रकट होता है उन्होंने पाणिनीय व्याकरण पर भी न्यास ग्रन्थ लिखा था। पर इस समय ये ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

महावृत्ति

अभयनन्दी दिगम्बर परम्परा के मान्य आचार्य थे। इनका समय वि० सं० की ८वीं ९वीं शताब्दी माना जाता है। डॉ० बेल्वलकर ने इनका समय ७५० ई० बताया है।[1] इन्होंने जैनेन्द्र व्याकरण पर महावृत्ति की रचना की। इस व्याकरण की उपलब्ध सभी टीकाओं में यह सर्वाधिक प्राचीन है। पंचवस्तु टीका के कर्ता ने इसका महत्त्व बताते हुए जैनेन्द्र व्याकरण रूप महल के किवाड़ की उपमा की है। यह वृत्ति ११ हजार श्लोक परिमाण है। डॉ० गोकुलचन्द जैन ने इसकी अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया है।[2]

शब्दाम्भोजभास्करन्यास

इस न्यास ग्रन्थ की रचना दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्रजी ने की। ये ११वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन्होंने अपने इस न्यास ग्रन्थ में दार्शनिक शैली अपनायी है। इस ग्रन्थ के ४ अध्याय, ३ पाद तथा २११ सूत्र तक की हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। वैसे यह ग्रन्थ १६,००० श्लोक परिमाण था।

पंचवस्तु टीका

यह टीका ग्रन्थ जैनेन्द्र व्याकरण पर प्रक्रिया ग्रन्थ है। यह ३३०० श्लोक परिमाण है। ग्रन्थ सरल शैली में होने के कारण व्याकरण के प्रारम्भिक अध्येताओं के लिए बहुत उपयोगी है। इसे इस व्याकरण का सोपान का बताया गया है—

टीकामालमिहारुरुक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमं।
प्रासादं पृथुपंचवस्तुकमिदं सोपानमारोहताम्॥

इसके रचनाकार का नाम नहीं मिलता है। सन्धिप्रकरण में एक स्थान पर "सन्धिं त्रिधा कथयति श्रुतकीर्तिरार्यः" यह पंक्ति मिलती है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि इसके रचयिता श्रुतकीर्ति रहे होंगे। इनका समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना गया है। अतः इस ग्रन्थ का रचनाकाल भी यही रहा होगा।[3]

---

१. सिस्टम्स आफ ग्रामर, पैरा ५०.
२. संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश परम्परा, ५६.
३. (अ) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-५, पृ० १२;
(आ) युधिष्ठिर मीमांसक—संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ५६३;
(इ) संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० १३५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघुजैनेन्द्र

इस ग्रन्थ की रचना दिगम्बर जैन पं० महाचन्द्र ने १२वीं शताब्दी में की। इन्होंने अभयनन्दी की महावृत्ति को आधार मानकर इस ग्रन्थ की रचना की। इसकी एक प्रति अंकलेश्वर जैन मन्दिर में तथा दूसरी प्रति प्रतापगढ़ (मालवा) के दिगम्बर जैन मन्दिर में है। यह प्रति अपूर्ण है।

जैनेन्द्र व्याकरणवृत्ति

राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों की ग्रन्थ सूची, भाग-२, पृ० २५० पर इस वृत्ति का उल्लेख है। इसके रचयिता मेघविजय बताये गये है। यदि ये हेमकौमुदी व्याकरण के कर्ता मेघविजय से अभिन्न हों तो इस ग्रन्थ का रचनाकाल १८वीं शती रहा होगा।

अनिरकारिकावचूरी

जैनेन्द्र व्याकरण की अनिरकारिका पर श्वेताम्बर जैन मुनि विजयविमल ने १७वीं शती में अवचूरी की रचना की है।

इन सब के अतिरिक्त भगवद् वाग्वादिनी नामक ग्रन्थ भी जैनेन्द्र व्याकरण से सम्बन्धित है। इसमें ८०० श्लोक प्रमाण जैनेन्द्र व्याकरण का सूत्र पाठ मात्र है।

शाकटायन व्याकरण पर टीकाएँ

जैन परम्परा के महावैयाकरणों में शाकटायन दूसरे वैयाकरण हैं। इनके शाकटायन व्याकरण पर भी अनेक टीका ग्रन्थ लिखे गये। विद्वानों की जानकारी के लिए कुछ प्रमुख ग्रन्थों का विवरणात्मक विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

अमोघवृत्ति

शाकटायन व्याकरण पर अमोघवृत्ति नाम की एक बहद् वृत्ति उपलब्ध है। यह वृत्ति सभी टीका ग्रन्थों में प्राचीन एवं विस्तारयुक्त है। इसका नामकरण अमोघवर्ष राजा को लक्ष्य बनाकर किया गया प्रतीत होता है। यह १८००० श्लोक परिमाण की वृत्ति है। यज्ञवर्मा ने इस वृत्ति की विशेषता बताते हुए कहा है—

गणधातुपाठयोगेन धातून्, लिंगानुशासने लिंगताम्।
औणादिकानुणादौ शेषं निशेषमात्रवृत्तौ विधात्॥

इससे इसकी उपयोगिता स्वतः प्रकट होती है। इसके रचनाकार का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, पर अन्यान्य ग्रन्थों में उपलब्ध प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि इसके रचनाकार स्वयं शाकटायन ही थे। वृत्ति में अदहदमोघवषोऽरातीन्' ऐसा उदाहरण है, जो अमोघवर्ष राजा का ही संकेत करता है। अमोघवर्ष का समय शक सं० ७३६ से ७८९ है। अतः इस ग्रन्थ की रचना ८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई होगी।

चिन्तामणिवृत्ति

इस वृत्ति की रचना यक्षवर्मा नामक विद्वान् ने की है। अपनी इस वृत्ति के विषय में वे स्वयं लिखते हैं कि यह वृत्ति 'अमोघवृत्ति' को संक्षिप्त करके बनायी गयी है। जैसे—

तस्याति महतिं वृत्तिं संहत्येयं लघीयसी।
संपूर्णलक्षणावृत्तिर्वक्ष्यते लक्षवर्मणा॥

बालाबाल जनोऽप्यस्या वृत्तेरभ्यासवृत्तितः।
समस्तं वाङ्मयं वेत्ति, वर्षेणैकेन निश्चयात्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ स्पष्ट है। यह वृत्ति ६०००० श्लोक परिमाण है। अजितसेन नामक विद्वान् से इस पर मणिप्रकाशिका नाम की टीका लिखी।

प्रक्रिया संग्रह

अभयचन्द्र नामक आचार्य ने शाकटायन के व्याकरण को प्रक्रियाबद्ध किया।

रूपसिद्धि

द्रविडसंघ के आचार्य दयापाल ने शाकटायन व्याकरण पर एक छोटी सी टीका लिखी। दयापाल आचार्य का समय वि०सं ११०० के आसपास है। इनका यह ग्रन्थ प्रकाशित है।

गणरत्नमहोदधि

गोविन्दसूरि के शिष्य वर्धमान सूरि नामक श्वेताम्बर आचार्य ने शाकटायन व्याकरण में आये हुए गणों का संग्रह करके इस ग्रन्थ की रचना की। इसका रचनाकाल वि० सं० ११९७ है। इसमें गणों को श्लोकबद्ध करके गण के प्रत्येक पद की व्याख्या के साथ उदाहरण भी दिये गये हैं। इस पर उनकी स्वोपज्ञ टीका भी है। ग्रन्थ के रचनाकाल का उन्होंने स्वयं ही निम्न श्लोक में उल्लेख किया है—

सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणां विक्रमतो, गणरत्नमहोदधिर्विहितः॥

युधिष्ठिर मीमांसक इसे शाकटायन व्याकरण पर आधारित न मानकर वर्धमान सूरि द्वारा संपादित स्वरचित व्याकरण के आधार पर ही इसकी रचना मानते हैं।[1] डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी ने इसे सभी ग्रन्थों का सार लेकर बनाया हुआ स्वतन्त्र व्याकरण का ग्रन्थ माना है। इस सम्बन्ध में उन्होंने इसी का एक श्लोक भी उद्धृत किया है—

विदित्वा शब्दशास्त्राणि, प्रयोगानुपलक्ष्य च।
स्वशिष्यप्रार्थिताः कूर्मो गणरत्नमहोदधिम्॥[2]

इन सभी टीका ग्रन्थों के अतिरिक्त स्वयं पाल्यकीर्ति द्वारा रचित लिंगानुशासन और धातुपाठ, प्रभाचन्द्रकृत शाकटायनन्यास, भावसेन त्रैवेद्य की टीका, अज्ञात लेखक की शाकटायन तरंगिणी आदि ग्रन्थ भी शाकटायन व्याकरण से ही सम्बन्धित हैं।

सिद्धहेमशब्दानुशासन की टीकाएँ

जैन व्याकरण-परम्परा में यह व्याकरण बहुत प्रसिद्ध और प्रिय रहा है। इसी कारण इस ग्रन्थ पर सबसे अधिक टीका-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इस पर अनेक टीका-ग्रन्थ स्वयं हेमचन्द्राचार्य ने लिखे थे। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१. स्वोपज्ञलघुवृत्ति—६००० हजार श्लोक परिमाण का वृत्ति ग्रन्थ।
२. स्वोपज्ञमध्यमवृत्ति—८००० श्लोक परिमाण।
३. रहस्यवृत्ति—२५ हजार श्लोक परिमाण।
४. बृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका) १२००० श्लोक परिमाण की इस वृत्ति में अमोघवृत्ति का सहारा लिया गया है।
५. बृहन्न्यास (शब्दमहार्णवन्यास) ८४००० श्लोक परिमाण का यह ग्रन्थ पूरा नहीं मिलता है।

---

१. युधिष्ठिर मीमांसक—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ५६३.
२. संस्कृत-प्राकृत-जैन व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० १३५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये सभी ग्रन्थ स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने अपने ही व्याकरण पर लिखे। इनके अतिरिक्त भी बहुत से टीका-ग्रन्थ इस पर लिखे गये, जिनका यहाँ संक्षिप्त उल्लेख ही पर्याप्त होगा।

१. **न्यायसारसमुद्धार**—कनकप्रभसूरि ने बृहन्न्यास को संक्षिप्त कर १३वीं शती में इसकी रचना की।

२. **लघुन्यास**—आचार्य रामचन्द्रसूरि ने वि० १३वीं शताब्दी में इस ग्रन्थ की रचना की।

३. **लघुन्यास**—धर्मघोषसूरि द्वारा रचित।

४. **न्यासोद्धारटिप्पण**—अज्ञात आचार्य द्वारा रचित इस ग्रन्थ की वि०सं० १२७० की हस्तलिखित प्रति मिलती है।

५. **हेमढुण्ढिका**—इस २३०० श्लोकात्मक ग्रन्थ के रचनाकार उदयसौभाग्य थे।

६. **अष्टाध्यायतृतीयपदवृत्ति**—रचयिता आचार्य विनयसागरसूरि।

७. **हेमलघुवृत्तिअवचूरि**—२२१३ श्लोकात्मक ग्रन्थ की रचना धनचन्द्र द्वारा की गई। इसकी १४०३ में लिखी हुई एक प्रति मिलती है।

८. **चतुष्कवृत्ति अवचूरि**—अज्ञात लेखक द्वारा।

९. **लघुवृत्तिअवचूरि**—नन्दसुन्दर मुनि द्वारा रचित इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति मिलती है।

१०. **हेमलघुवृत्ति ढुण्ढिका**— ३२०० श्लोक प्रमाणात्मक इस ग्रन्थ की रचना मुनिशेखर मुनि ने की।

११. **ढुण्ढिका दीपिका**—इसके रचयिता कायस्थ अध्यापक काषल थे, जो हेमचन्द्र के समकालीन थे। ग्रन्थ ६००० श्लोक परिमाण है।

१२. **बृहद्वृत्तिसारोद्धार**—किसी अज्ञात लेखक द्वारा रचित इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ वि० सं० १५२१ में लिखी हुई मिलती हैं।

१३. **बृहद्वृत्ति अवचूर्णिका**—वि०सं० १२६४ में अमरचन्द सूरि ने इस ग्रन्थ की रचना की। लेखक ने इसमें कई बातें नवीन कही हैं तथा बहुत अंशों में यह कनकप्रभसूरिकृत लघुन्यास से मिलता है।[1]

१४. **बृहद्वृत्तिढुण्ढिका**—८००० श्लोकात्मक इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५८१ में मुनि सौभाग्यसागर ने की।

१५, **बृहद्वृत्ति दीपिका**— इसके रचयिता विद्याधर थे।

१६. **बृहद् वृत्तिटिप्पन**—अज्ञातनामा विद्वान द्वारा वि०सं० १६४६ में रचित।

१७. **क्रियारत्नसमुच्चय**—इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य गुणरत्नसूरि थे। इसमें सिद्धहेमशब्दानुशासन में आये धातुओं के दस गण तथा सन्नन्तादि प्रक्रिया के रूपों की साधनिका को सूत्रों के साथ समझाने का यत्न किया गया है। सौत्रधातुओं के सब रूपाख्यानों को विस्तारपूर्वक समझा दिया गया है। ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति में कर्ता और कृति का विस्तृत परिचय दिया गया है। इस सम्बन्ध में निम्न पद्य द्रष्टव्य है—

> कालेषड्रसपूर्व(१४६६)वत्सरमिते श्रीविक्रमार्काद् गते,
> गुर्वादेशविमृश्य च सदा स्वान्योपकारं परम्।
> ग्रन्थं श्रीगुणरत्नसूरिरतनोत् प्रज्ञाविहिनोप्यमुं,
> निर्हेतुप्रकृतिप्रधानजननैः शोध्यस्त्वयं धीधनैः ॥

१८. **स्यादिसमुच्चय**—इस ग्रन्थ की रचना अमरचन्दसूरि ने १३वीं शताब्दी में की। यह ग्रन्थ सि० श० के अध्येताओं के लिए बड़ा उपयोगी है। भावनगर की यशोविजय जैन ग्रन्थमाला से यह छप गया है।

---

१. यह ग्रन्थ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड की ओर से छपा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. कविकल्पद्रुम—वि० सं० १५७७ में तपागच्छीय हर्षकुल गणि ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें सि०श० में निर्दिष्ट धातुओं की विचारात्मक पद्यबद्ध रचना है।

इन सभी टीका ग्रन्थों के अतिरिक्त सिद्धहेमशब्दानुशासन से सम्बन्धित अनेक प्रक्रिया-ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं। इन ग्रन्थों में मूल शब्दानुशासन के क्रम को बदलकर प्रक्रियाओं के क्रम से आवश्यकतानुसार सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के ग्रन्थों का निर्देश अग्रिम पंक्तियों में प्रस्तुत है।

१. हेमलघुप्रक्रिया

इस ग्रन्थ की रचना तपागच्छीय उपाध्याय विनयविजयगणि ने वि० सं० १७१० में की। विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ संज्ञा, सन्धि, लिंग, युष्मदस्मद्, अव्यय, स्त्रीलिंग, कारक, समास और तद्धित इन प्रकरणों में विभक्त है।

२. हेमबृहद्प्रक्रिया

इसकी रचना आधुनिक कविवर भायाशंकरजी ने, हेमलघुप्रक्रिया के क्रम को ध्यान में रखते हुए की है। इसका रचनाकाल १०वीं शती है।

३. हेमप्रकाश

यह हेमलघुप्रक्रिया की ३४००० श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ रचना है। इसकी रचना वि० सं० १७९७ में हुई तथा स्थान-स्थान पर लेखक ने अपनी व्याकरण विषयक मौलिक योग्यता का परिचय भी दिया है।

४. चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी

यह भी सि०श० का प्रक्रिया ग्रन्थ है। इसकी रचना तपागच्छीय उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७५७ में आगरे में की। इसका क्रम भट्टोजी दीक्षित रचित सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार रखा गया है। इसका ६००० हजार श्लोक परिमाण है।

५. हेमशब्दप्रक्रिया

इसकी रचना मेघविजयगणि ने वि० सं० १७५७ के आसपास की। यह ३५०० श्लोक परिमाण का ग्रन्थ है। इसकी हस्तलिखित प्रति भण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना में है।

६. हेमशब्दचन्द्रिका

६०० श्लोक प्रमाण के इस ग्रन्थ की रचना उपाध्याय मेघविजयगणि ने की। पूना के भण्डारकर इन्सटीट्यूट में इसकी वि० सं० १७५५ में लिखित प्रति है।

७. **हेमप्रक्रिया**—वीरसेन द्वारा रचित है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त हेमशब्दसमुच्चय, हेमशब्दसंचय, हेमकारकसमुच्चय आदि ग्रन्थों का भी अन्यान्य ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है, जो हेमशब्दानुशासन से सम्बन्धित हैं।[1]

भिक्षुशब्दानुशासन की टीकाएँ

भिक्षुशब्दानुशासन जैन व्याकरण परम्परा का नूतनतम व्याकरण ग्रन्थ माना जा सकता है। इस पर भी अनेक टीका-ग्रन्थों की रचनाएँ हुई है।

१. भिक्षुशब्दानुशासनलघुवृत्ति

यह ग्रन्थ भिक्षुशब्दानुशासन की वृत्ति है। इसको लिखने का कार्य तो मुनि श्री तुलसीराम जी ने प्रारम्भ

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, पृ० ४३-४४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया पर अन्य कार्यों में व्यस्त होने से इसे वे पूरा न कर सके। इसे पूरा करने का कार्य वि० सं० १९९५ में मुनि श्री धनराज जी तथा मुनि श्री चन्दनमल जी दोनों विद्वानों ने पूरा किया।

२. भिक्षुधातुपाठ

इस कार्य को मुनि श्री चन्दनमलजी ने वि० सं० १९८९ में पूरा किया था। इसमें कुल २००२ धातुओं का संग्रह गण के क्रम से किया गया है।

३. भिक्षुन्यायदर्पणलघुवृत्ति

यह भिक्षुशब्दानुशासन के १३५ सूत्रों की लघुवृत्ति है। इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि सर्वप्रथम मुनिश्री तुलसीराम जी ने (आचार्य तुलसी) ने वि० सं० १९८९ में मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को रतनगढ़ में पूरी की।

४. भिक्षुन्यायदर्पण बृहद्वृत्ति

इस ग्रन्थ में १३५ न्यायों पर विस्तृत वृत्ति है। इसकी रचना मुनिश्री चौथमल जी ने की है। उन्होंने वि० सं० १९९४ के भाद्र शुक्ला ३ को इसको पूरा किया।

५. भिक्षुलिंगानुशासन सवृत्तिक

१५७ श्लोकात्मक यह ग्रन्थ विभिन्न छन्दों में लिखा गया है। इन श्लोकों के वृत्तिकार मुनिश्री चांदमल जी हैं वृत्ति का कार्य विक्रम संवत् १९९७ ज्येष्ठ शुक्ला ९ को पूर्ण हुआ था।

६. कारिकासंग्रहवृत्ति

भिक्षुशब्दानुशासन के सूत्रों में जो कारिकाएँ आई हैं, उनकी वृत्ति इस ग्रन्थ में लिखी गई है। इसकी प्रतिलिपि मुनिश्री नथमलजी ने विक्रम संवत् १९९७ श्रावण ६ गुरुवार को लाडनूं में की थी।

७. कालुकौमुदी

यह ग्रन्थ भिक्षुशब्दानुशासन का लघु प्रक्रिया ग्रन्थ है। इसकी रचना भी मुनिश्री चौथमलजी ने ही की। विक्रम संवत् १९९१ आश्विन कृष्णा १० बुधवार को जोधपुर में यह ग्रन्थ पूरा हुआ था। प्रशस्तिश्लोक इस प्रकार है—

तत्पादाब्जप्रसादेन, भैक्षुशब्दानुशासनी ।
मुनिना चौथमल्लेन, कृतेयं कालुकौमुदी ॥६॥
भू निधि निधि चन्द्रेऽब्दे पुष्ये, जोधपुरे दशमी बुधदिवसे ।
आश्विनमासे कृष्णपक्षे, पूर्णाकालुगणेन्द्रसमक्षे ॥७॥

इस ग्रन्थ की विशेषताओं पर मुनि श्रीचन्द कमल ने विस्तारपूर्वक विचार किया है।[1]

जैनेतर संस्कृत व्याकरणों पर जैनाचार्यों की टीकाएँ

ऊपर किये गये प्रयास से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत वाङ्मय में व्याकरणशास्त्र के क्षेत्र में जैनाचार्यों का योगदान एक महत्त्वपूर्ण निधि है। इन्होंने स्वतन्त्र व्याकरणशास्त्रों का प्रणयन किया और इन पर टीका-ग्रन्थों की रचना भी की। इसके साथ ही इन आचार्यों ने उन संस्कृत के व्याकरणों पर भी टीका-ग्रन्थों की रचना की जो जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत नहीं हैं। अग्रिम पंक्तियों में इन्हीं ग्रन्थों का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

१. मुनि श्रीचन्द कमल : भिक्षुशब्दानुशासन : एक परिशीलन, संस्कृत-प्राकृत-जैन व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० १५०—१६३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाणिनीय व्याकरण—टीकाएँ

आचार्य पाणिनि का शब्दानुशासन किसी न किसी रूप में संस्कृत भाषा का या इसके माध्यम से अन्य विषयों का अध्ययन करने वालों का प्रिय रहा है। जैनाचार्यों में भी इसका किसी न किसी रूप में प्रचलन अवश्य रहा है। अनेक आचार्यों ने इस पर टीका ग्रन्थ भी लिखे। इस प्रकार के टीका-ग्रन्थों का परिचयात्मक विवरण इस प्रकार है—

व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि

सुधानिधि की रचना आचार्य विश्वेश्वरसूरि ने की है। ग्रन्थ का सर्जन अष्टाध्यायी सूत्रक्रम को ध्यान में रखकर किया गया है। यह ग्रन्थ प्रारम्भ के तीन अध्यायों पर ही उपलब्ध होता है, जिसका विद्याविलास प्रेस से दो भागों में प्रकाशन भी हो चुका है। इसके मंगलचरण के पाँचवें श्लोक में पतंजलि के प्रति जो श्रद्धा व्यक्त की गई है, उससे प्रतीत होता है, इस ग्रन्थ का प्रणयन महाभाष्य को आधार मानकर किया गया होगा। श्लोक इस प्रकार है—

विषये फणिनायकस्य क्षमते नैनं विधातुमल्पमेधाः।
विबुधाधिपतिप्रसादधाराः पुनराराादुपकारमारभन्ते ॥

इनका समय भट्टोजी दीक्षित के बाद तथा उनके पौत्र हरिदीक्षित के पूर्व माना गया है।[1]

शब्दावतारन्यास

इस ग्रन्थ के प्रणेता जैनेन्द्र व्याकरण के रचनाकार पूज्यपाद देवनन्दी थे। ग्रन्थ अप्राप्य है। अन्यत्र उल्लेखों के आधार पर यह कहा जाता है कि इसकी रचना पूज्यपाद ने की। इस सम्बन्ध में शिमोगा जिले की नगर तहसील के एक शिलालेख को भी उद्धृत किया जाता है। श्लोक इस प्रकार है—

न्यासं जैनेन्द्रसंज्ञं सकल बुधनुतं पाणिनीयस्य भूयो।
न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा ॥
सस्तत्वार्थस्य टीकां व्यरचदिह भात्यसौ पूज्यपादः।
स्वामी भूपालवन्द्यः स्वपरहितवचः पूर्णदृग्बोधवृत्तः ॥

प्रक्रियामंजरी

यह कृति काशिकावृत्ति पर टीका ग्रन्थ है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मद्रास तथा त्रिवेन्द्रम में संग्रहीत हैं। इसका प्रणयन मुनि विद्यासागर ने किया है। इनके गुरु का नाम श्वेतगिरि था। इन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में न्यासकार का उल्लेख भी बड़े आदर के साथ किया है। पद्य इस प्रकार है—

वन्दे मुनीन्द्रान् मुनिवृन्दवन्द्यान्,
श्रीमद्गुरुन् श्वेतगिरीन् वरिष्ठान्।
न्यासकारवचः पद्मनिकरोद्‌गीर्णमम्बरे,
गृह्णामि मधुप्रीतो विद्यासागर षट्पदः ॥

इसमें जिन न्यासकार का स्मरण किया गया है वे पूज्यपाद देवनन्दी अथवा काशिका विवरण पंजिका न्यास के कर्त्ता आचार्य जिनेन्द्रबुद्धि रहे होंगे।

क्रियाकलाप

इसकी रचना आचार्य भावदेवसूरि के गुरु भावडारगच्छीय आचार्य जिनदेवसूरि ने की थी। रचनाकाल वि० सं० १४१२ के आसपास का है।

१. वही, पृ० १०२—जानकीप्रसाद द्विवेदी : संस्कृत व्याकरणों पर जैनाचार्यों की टीकाएँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कातन्त्र व्याकरण पर टीकाएँ

कातन्त्र व्याकरण के जैनेतर होने पर भी अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से इसका बहुत प्रभाव रहा है। यह प्रत्येक क्षेत्र में वैयाकरणिक अध्ययन दृष्टि से प्रिय ग्रन्थ रहा है। अनेक जैनाचार्यों ने इस पर टीकाओं की रचना की। प्रस्तुत प्रकरण की सीमाओं के अन्तर्गत उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

कातन्त्रदीपक

यह ग्रन्थ मुनीश्वरसूरि के शिष्य हर्ष मुनि द्वारा रचित है। मंगलाचरण लेखक के गुरु का नाम, ग्रन्थ लिखने का प्रयोजन आदि निम्न पद्यों से स्पष्ट होते हैं।

प्रारम्भ का पद्य—

भूर्भुवः स्वस्त्रयीशानं, वरिवस्यं जिनेश्वरम्।
स्मृत्वा च भारतीं सम्यग्, वक्ष्येकातन्त्रदीपकम्॥

अन्त में—

श्री मुनीश्वरसूरिकं शिष्येण लिखितोमुदा।
मुनि हर्षमुनीन्द्रेण नाम्नाकातन्त्रदीपकः।
व्यलेखि मुनिहर्षाख्यैर्वाचिकैर्बुद्धिवृद्धये॥

कातन्त्ररूपमाला

यह ग्रन्थ प्रक्रिया क्रम से कातन्त्र सूत्रों की व्याख्या है। वादीपर्वतवज्री मुनीश्वर भावसेन ने मन्दधी बालकों को कातन्त्र व्याकरण का सरलतया बोध करने के लिये इसकी रचना की। यह ग्रन्थ निर्णयसागर यन्त्र बम्बई तथा वीर पुस्तक भण्डार जयपुर से प्रकाशित है।

कातन्त्रविस्तर

यह ग्रन्थ कातन्त्र व्याकरण की विस्तृत टीका है। वि० सं० १४४८ के आसपास इसकी रचना वर्धमान ने की थी। इसका कारकभांगीय कुछ अंश मंजूषापत्रिका (वर्ष १२, अंक ९) में प्रकाशित है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न साहित्य-भण्डारों में उपलब्ध हैं। यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध रहा होगा। इसी कारण इस पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गईं।[1]

कातन्त्रपंजिकोद्योत

वर्धमान के शिष्य त्रिविक्रम ने इस ग्रन्थ की रचना की। रचना-काल वि० सं० १२२१ ज्येष्ठ वदी, तृतीया शुक्रवार है। रचना का उद्देश्य कातन्त्रपंजिका पर किये गये असारवचनों को निःसार करना है। इसका हस्तलेख संघ-भण्डार पाटन में संग्रहीत है।

कातन्त्रोत्तरम्

इसकी रचना विजयानन्द ने की। यह टीका ग्रन्थ है। इसका हस्तलेख लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर अहमदाबाद में सुरक्षित है। ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य प्रतिपद्यों के आक्षेपों का समाधान है।

कातन्त्रभूषणम्

आचार्य धर्मघोषसूरि ने कातन्त्र व्याकरण के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा बृहट्टिपणिका में उल्लेख है।[2]

१. संस्कृत-प्राकृत-जैन-व्याकरण और कोश परम्परा, पृ० ११३.
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, पृ० ५३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कातन्त्र विभ्रमटीका

लघुखरतरच्छ के प्रवर्तक आचार्य जिनसिंहसूरि के शिष्य आचार्य जिनप्रभसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। वि० सं० १३५२ में योगिनीपुर (दिल्ली) में कायस्थ खेतल की प्रार्थना पर उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसका उल्लेख उन्होंने निम्न पद्य में किया है—

पक्षेषु शक्तिशशिभून् भित्तविक्रमाब्दे,
धार्म्याङ्किते हरतिथौ परियोगिनीनाम्।
कातन्त्रविभ्रम इह व्यतनिष्ट टीकाम्,
अप्रौढधीरपि जिनप्रभसूरिरेताम् ।।

क्रियाकलाप

जिनदेवसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसका सं०१५२० का एक हस्तलेख अहमदाबाद में प्राप्त है।

चतुष्कव्यवहार ढुण्ढिका

इसके रचनाकार श्री धर्मप्रभसूरि थे। हस्तलेखों में इसका प्रकरणान्त भाग ही प्राप्त होता है।

दुर्गपदप्रबोध

जिनेश्वरसूरि के शिष्य प्रबोधमूर्ति गणि ने १४वीं शताब्दी में इस ग्रन्थ की रचना की थी। वह ग्रन्थ सम्पूर्ण कातन्त्र व्याकरण के सूत्रों पर रचा गया है। ग्रन्थकार ने इसमें सभी मतों का सार समाविष्ट करने का प्रयास किया है।

दुर्गप्रबोध टीका

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ३, में डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ने इस कृति का उल्लेख किया है। इसकी रचना वि० सं० १३२८ में जिनप्रबोध सूरि ने की थी।

दौर्गसिंही वृत्ति

दुर्गसिंहरचित वृत्ति पर यह ग्रन्थ लिखा गया है। ३००० श्लोक परिमाण के इस ग्रन्थ की रचना आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने वि०सं० १३६९ में की थी। बीकानेर के भण्डार में इसका हस्तलेख विद्यमान है।

बालावबोध

अंचलगच्छेश्वर मेरुतुंगसूरि ने इसका प्रणयन किया था। इसके अनेक हस्तलेख अहमदाबाद, जोधपुर तथा बीकानेर के ग्रन्थ भण्डारों में उपलब्ध हैं।

बालावबोध

राजगच्छीय हरिकलश उपाध्याय ने इसकी रचना की। इसके हस्तलेख बीकानेर में प्राप्त है।

वृत्तित्रयनिबन्ध

आचार्य राजशेखरसूरि ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इसके नाम से यह ज्ञात होता है कि कातन्त्र व्याकरण की तीन वृत्तियों पर इसमें विचार किया गया होगा। ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।[1]

सारस्वत व्याकरण की टीकाएँ

अनुभूति स्वरूपाचार्य द्वारा प्रोक्त इस ग्रन्थ में ६०० सूत्र हैं। इस ग्रन्थ पर भी अनेक टीका ग्रन्थ लिखे गये। इनमें से अनेक ग्रन्थ जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत हैं। आगे इन्हीं पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

सुबोधिका

नागपुरीय तपागच्छाधिराज भट्टारक आचार्य चन्द्रकीर्ति ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। यह कृति सारस्वत

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, पृ०५३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याकरण पर टीका-ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल निश्चित नहीं है, फिर भी युधिष्ठिर मीमांसक ने इसका समय १६वीं शती का अन्त या १७वीं शती का प्रारम्भ माना है।[1] ग्रन्थ सरल और सुबोध है।

क्रियाचन्द्रिका

खरतरगच्छीय गुणरत्न ने इस वृत्ति का प्रणयन वि० सं० १६४१ में किया था। इसका हस्तलेख बीकानेर में विद्यमान है।

क्रियाचन्द्रिका

मेघविजयजी ने इसकी रचना की थी। इसका समय निश्चित नहीं है।

दीपिका

इसके रचनाकार विनयचन्द्रसूरि के शिष्य मेघरत्न थे। इसकी रचना वि०सं०१५३६ में की गई। इसका एक हस्तलेख ला०द० संस्कृति विद्या मन्दिर अहमदाबाद में सुरक्षित है। प्रारम्भिक श्लोक इस प्रकार है—

नत्वापार्श्वं गुरुमपि तथा मेघरत्नाऽभिधोऽहम्।
टीकां कुर्वे विमल मनसं, भारतीप्रक्रियां ताम्॥

धातुतरंगिणी

तपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें १८९१ धातुओं के रूप बताये गये हैं। इसकी वि० सं० १६१६ में लिखित एक प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर अहमदाबाद में विद्यमान है।

न्यायरत्नावली

खरतरच्छीय आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य दयारत्न मुनि ने सं० १६२६ में इसकी रचना की। इसमें सारस्वत व्याकरण के न्यायवचनों का विवरण है। वि० सं० १७३७ में लिखित इसकी एक प्रति ला०द०भा० संस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद में विद्यमान है।

पंचसन्धिटीका

यह ग्रन्थ मुनि सोमशील द्वारा प्रणीत है। पाटन के भण्डर में इसकी प्रति प्राप्त है।

प्रक्रियावृत्ति

खरतरगच्छीय मुनि विशालकीर्ति ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसकी प्रति श्री अगरचन्द्र नाहटा के संग्रह में विद्यमान है।

भाषाटीका

मुनि आनन्दनिधि ने १८वीं शताब्दी में इसकी रचना की। इसका हस्तलेख भीनसार के बहादुरमल बांठिया-संग्रह में विद्यमान है।

यशोनन्दिनी

दिगम्बर मुनि धर्मभूषण के शिष्य यशोनन्दी ने इसका प्रणयन किया था।

रूपरत्नमाला

१४००० श्लोक परिमाण के इस ग्रन्थ की रचना तपागच्यछी भानुमेरु के शिष्य मुनि नयसुन्दर ने वि०स० १७७६ में की थी। ग्रन्थ में प्रयोगों की साधनिका है। इसकी प्रतियां बीकानेर व अहमदाबाद के ग्रन्थभण्डारों में विद्यमान है।

---

१. युधिष्ठिर मीमांसक—संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ५७५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वच्चिन्तामणि—मुनि विनयसागरसूरि ने इसकी रचना की थी। स्वयं ग्रन्थकार ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है—

श्री विधिपक्षगच्छेशाः, सूरिकल्याणसागराः।
तेषां शिष्यैर्वराचार्यैः सूरिविनयसागरैः ॥२४॥
सारस्वतस्य सूत्राणां, पद्यबन्धैर्विनिर्मितः।
विद्वच्चिन्तामणि ग्रन्थः कण्ठपाठस्य हेतवे ॥२५॥

इसकी एक प्रति ला०द० संस्कृति विद्या मन्दिर अहमदाबाद में विद्यमान है।

शब्दप्रक्रियासाधनी—आचार्य विजयराजेन्द्र सूरि ने २०वीं शताब्दी में इसकी रचना की।

शब्दार्थचन्द्रिका—विजयानन्द के शिष्य हंसविजयगणि ने इसकी रचना की थी। सं० १७०८ में ग्रन्थकार के विद्यमान होने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इनका अन्य परिचय नहीं मिलता है।

सारस्वतटीका—मुनि सत्यप्रबोध ने इसका प्रणयन किया। पाटन और लींबड़ी के भण्डारों में इसके हस्तलेख प्राप्त होते हैं।

सारस्वतटीका—इस श्लोकबद्ध टीका की रचना तपागच्छीय उपाध्याय भानुचन्द्र के शिष्य देवचन्द्र ने की थी। श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में इसकी प्रति प्राप्त है।

सारस्वतटीका—अपरनाम धनसागरी नामक इस ग्रन्थ की रचना मुनि धनसागर ने की थी। इसका उल्लेख जैन साहित्य के संक्षिप्त इतिहास में किया गया है।

सारस्वतरूपमाला—रचनाकार पद्मसुन्दरगणि ने इसमें धातुरूपों को दर्शाया है। वि० सं० १७४० में लिखी गई इसकी प्रति ला० द० भा० संस्कृति विद्या मन्दिर अहमदाबाद में प्राप्त है।

सारस्वतमण्डनम्—श्रीमालजातीय मन्त्री मण्डन ने १५वीं शताब्दी में रचना की थी।

सारस्वतवृत्ति—तपागच्छीय उपाध्याय भानुचन्द्र ने १७वीं शताब्दी में इस वृत्तिग्रन्थ की रचना की थी। यह क्षेमेन्द्र रचित सारस्वत टिप्पणी पर वृत्ति है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ पाटण तथा छाणी के ज्ञान भण्डारों में विद्यमान हैं।

सारस्वतवृत्ति—वि सं० १६८१ में खरतरगच्छीय मुनि सहजकीर्ति ने इसकी रचना की थी। इसके हस्तलेख बीकानेर के श्री पूजाजी तथा चतुर्भुजजी के भण्डार में सुरक्षित हैं।

सिद्धान्तरत्नम्—युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इस ग्रन्थ के रचनाकार जिनरत्न थे। यह बहुत अर्वाचीन ग्रन्थ माना है।

सिद्धान्तचन्द्रिका व्याकरण की टीकाएँ

रामाश्रम या रामचन्द्राश्रम ने "सिद्धान्तचन्द्रिका" नामक एक विशदवृत्ति का प्रणयन किया। इसमें लगभग २३०० हजार सूत्र हैं। इस पर भी जैनाचार्यों द्वारा रचित अनेक टीका-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनका सामान्य परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अनिट्कारिका स्वोपज्ञवृत्ति—नागपुरीय तपागच्छ के हर्षकीर्तिसूरि ने इसकी रचना की है। अनिट्कारिका पर यह स्वपोज्ञवृत्ति है। रचनाकाल सं० १६६६ है। बीकानेर के दानसागर भण्डार में इसकी हस्तलिखित प्रति विद्यमान है।

सुबोधिनी—खरतर आम्नाय के श्री भक्तिविनय के शिष्य सदानन्दगणि ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें आये श्लोक के अनुसार इसका रचनाकाल १७९९ है। श्लोक इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निधिनन्दार्वभूवर्षे, सदानन्दसुधीमुदे।
सिद्धान्तचन्द्रिकावृत्तिं कृदन्ते कृतवानुजुम् ।।३१।११६.

यह वृत्ति ग्रन्थ है।

अनिट्कारिकावचूरि—इसके प्रणेता मुनि क्षमामाणिक्य थे। बीकानेर के श्रीपूज्यजी के भण्डार में इसकी हस्तलिखित प्रति विद्यमान है।

सिद्धान्तचन्द्रिकावृत्ति—खरतरगच्छीय मुनि विजयवर्धन के शिष्य ज्ञानतिलक ने १८वीं शताब्दी में इसकी रचना की। इसके हस्तलेख बीकानेर के महिमा भक्ति भण्डार और अबीरजी के भण्डार में विद्यमान हैं।

भूधातुवृत्ति—इस वृत्ति की रचना खरतरगच्छीय क्षमाकल्याणमुनि ने वि० सं० १८२८ में की है। राजनगर के महिमा-भक्ति भण्डार में इसका हस्तलेख प्राप्त है।

सिद्धान्तचन्द्रिकाटीका—आचार्य जिनरत्नसूरि द्वारा इसका प्रणयन किया गया है।

सुबोधिनी—३४६४ श्लोक परिमाण की इस वृत्ति का प्रणयन खरतरगच्छीय रूपचन्द्र ने किया है। बीकानेर के भण्डार में इसकी प्रतियाँ विद्यमान हैं।

औक्तिक रचनाएँ—कुछ जैनाचार्यों ने गुजारती भाषा द्वारा संस्कृत का शिक्षण देने के लिए भी व्याकरण ग्रन्थों की रचना की। ऐसे ग्रन्थों को "औक्तिक" संज्ञा प्रदान की गई। इस प्रकार के कुछ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जो निम्न हैं—

१. मुग्धावबोध औक्तिक

इस ग्रन्थ की रचना कुलमण्डनसूरि ने १५वीं शताब्दी में की है। इस औक्तिक ग्रन्थ में ६ प्रकरण केवल संस्कृत भाषा में हैं। प्रथम, द्वितीय, सातवें और आठवें प्रकरणों में सूत्र और कारिकाएँ संस्कृत में हैं और विवेचन जूनीगुजराती में है। तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और नवम प्रकरण जूनीगुजराती में हैं। इसमें विभक्ति विचार, कृदन्त विचार, उक्तिभेद और शब्दों का संग्रह है।

२. वाक्यप्रकाश

वृहत्तपागच्छीय रत्नसिंह सूरि के शिष्य उदयवर्धन ह वि० सं० १५०७ में वाक्य प्रकाश नामक औक्तिक ग्रन्थ की रचना की। इसमें १२८ पद्य हैं। इसका उद्देश्य गुजराती द्वारा संस्कृत भाषा सिखाना है। इसलिए यहाँ कई पद्य गुजराती में देकर उसके साथ संस्कृत में अनुवाद दिया गया है। इस ग्रन्थ पर वि० सं० १५८३ में हर्षकुल द्वारा, सं० १६६४ में जिनविजय द्वारा तथा रत्नसूरि द्वारा टीकाएँ लिखी गई।

३. उक्तिरत्नाकर

पाठक साधुकीर्ति के शिष्य साधुसुन्दरगणि ने वि० सं० १६८० के आसपास उक्तिरत्नाकर ग्रन्थ की रचना की। अपनी देश भाषा में प्रचलित देश्य-रूपवाले शब्दों के संस्कृत प्रतिरूपों का ज्ञान कराने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गई। इसमें कारक का ज्ञान कराने का भी प्रयास किया गया है।

४. उक्तिप्रत्यय

मुनि धीरसुन्दर ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के भण्डार में है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

५. उक्तिव्याकरण

इसकी रचना किसी अज्ञात विद्वान् ने की है। सूरत के भण्डार में इसकी हस्तलिखित प्रति विद्यमान है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org